समकालीन हिंदी कविता में चेतना के विविध आयाम

संपादक

डॉ. रजनी शिखरे, संतोष नागरे

Scanned with CamScanner

मूल्य : पाँच सौ रुपये मात्र

ISBN 978-81-944045-2-1

पुस्तक : समकालीन हिंदी कविता में चेतना के विविध आयाम

संपादक : डॉ. रजनी शिखरे

संतोष नागरे

प्रकाशक : विद्या प्रकाशन

सी, 449, गुजैनी, कानपुर-22

दूरभाष : 0512 - 2285003

भ्रमण ध्वनि : 09415133173

E-mail : vidyaprakashan.knp@gmail.com

Website : www.vidyaprakashankanpur.com

संस्करण : प्रथम 2019 ई.

मूल्य : 500.00 रुपये मात्र

शब्द सज्जा : यश ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक : श्री पूजा प्रिंटर्स, नौबस्ता- कानपुर

Scanned with CamScanner

14. समकालीन कवि : मंगलेश डबराल —डॉ. पंडित बन्ने 98-101
15. समकालीन हिंदी कविता में सांस्कृतिक चेतना —डॉ. अमोल पालकर 102-108
16. कँवल भारती के काव्य में दलित चेतना ('तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती' के विशेष संदर्भ में) —डॉ. मनोहर जमधाड़े 109-112
17. समकालीन हिंदी कविता में नारी चेतना —डॉ. रोहिणी वांगीकर 113-118
18. समकालीन हिंदी ग़ज़ल —डॉ. मनोजकुमार ठोसर 119-124
19. राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कविता (विशेष संदर्भ : धूमिल) —डॉ. माधव शिवशेट्टे 125-129
20. समकालीन हिंदी कविता में आर्थिक चेतना —रामहरि काकड़े 130-134
21. प्रगतिवादी हिंदी कविता में जनचेतना —हिरा पोटकुले 135-139
22. समकालीन हिंदी कविता में स्त्री चेतना —परवीन शेख 140-145
23. समकालीन हिंदी कविता में दलित चेतना —युवराज मुलये 146-151
24. गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों में आशा एवं निराशा का स्वर —भागीनाथ वाकळे 152-160
25. समकालीन हिंदी कविता : समसामयिक यथार्थ—संतोष नागरे 161-168

Scanned with CamScanner

25.

समकालीन हिंदी कविता : समसामयिक यथार्थ

–संतोष नागरे

समकालीन हिंदी कविता का आरम्भ 1960 के पश्चात् होता है। समकालीन हिंदी कविता अपने समय की धारा के साथ 1960 से लेकर आज तक गतिशील है। समकालीन हिंदी कविता अपने समय से मुठभेड़ करती हुई नयी चेतना को जगाती है। 1960 के पश्चात् आजादी से हुआ मोहभंग, भ्रष्ट राजनीति, बढ़ती आर्थिक-सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, प्रांतवाद, वंशवाद, आरक्षण के नाम पर बढ़ता सामाजिक तनाव, औद्योगीकरण से बढ़ते शहरीकरण में दम तोड़ते गाँव, वैश्वीकरण तथा पूँजी के विस्तार से फैलता बाजार, उपभोक्तावादी संस्कृति के आक्रमण से नष्ट होती परिवार तथा मूल्य व्यवस्था, मीडिया की आभासी दुनिया में संवेदनाहीन होता मनुष्य, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, महँगाई तथा बेरोजगारी की मार झेलती जनता, प्रकृति के अमर्यादित दोहन से हुआ पर्यावरण ह्रास, किसान, आदिवासी, दलित तथा स्त्री वर्ग द्वारा अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए की जा रही जद्दोजहद आज के समय का यथार्थ है। समकालीन हिंदी कविता अपने समसामयिक यथार्थ को सपाट रूप से दो टूक शब्दों में बयान करती है। डॉ. संतोषकुमार तिवारी इस संदर्भ में ठीक ही कहते हैं- "हमारे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में जो मोहभंग, मूल्यहीनता और अव्यवस्था गहराती गई है, उसकी हू-ब-हू शक्ल समकालीन कविता में आक्रोश, विद्रोह, व्यंग्य और चौकाने वाली पंक्तियों के माध्यम से देखने को मिलती है।"[1]

15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। आजादी के पश्चात् हमने प्रजातंत्र अपनाया। आजादी के बाद राज और नीति को लेकर विरोधाभास पाया जाता है। आजादी के बाद बढ़ता भाई-भतीजावाद, वंशवाद, राजनेता-पूँजीपति और जमींदारों की साँठ-गाँठ तथा सत्ता को ही अन्तिम सत्य मानकर किये जाने वाले समझौतों से देश का चित्र और चरित्र खराब हो गया। जिसके कारण जनता का जनतंत्र से मोहभंग हुआ। आजादी के पचास साल बाद भी इन स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आम-आदमी आज भी दो जून की रोटी के लिए मोहताज है। देश के सूत्रधारों द्वारा भूखी जनता को राष्ट्रप्रेम सिखाया जा रहा है। उनका मानना है कि वस्त्र से अधिक बम जरूरी है, क्योंकि युद्ध

Scanned with CamScanner

से ही बच्चों का भविष्य संवर सकता है। स्त्री की स्वतंत्रता उसकी सौंदर्य में छिपी होने से उसने एक उपभोग की वस्तु बनकर ही अपनी जिन्दगी बितानी चाहिए। आजादी के पचास साल बाद भी लुटेरे ही इस देश के निर्माण कार्य में जुटे हुए हैं। मक्कार ईमानदारी की भाषा सिखा रहे हैं। विकास के नाम पर जनता की आँखों में धूल फेंकी जा रही है। अहंकारी ज्ञान के प्रचार में व्यस्त हैं, जबकि इसके ठीक विपरीत विनम्रता मूर्खता मानी जा रही है। जनता को जगाने का अपना काम छोड़कर बुद्धिजीवी अपने चन्द स्वार्थ के लिए चापलूसों के तलवे चाट रहे हैं। ईमानदारी का ढोंग रचने वाले अपनी चोरजेबें भरने में ही जीवन की सार्थकता समझ रहे हैं। आजादी के पचास साल बाद देश के सूत्रधारों द्वारा देश के हो रहे विनाश पर प्रहार करते हुए 'सूत्रधार' कविता में विमल कुमार कहते हैं-

"कि आजादी के पचास साल बाद
लुटेरे ही देश का निर्माण कर सकेंगे
क्योंकि उनमें अद्‌भुत नेतृत्व-क्षमता है
कि मक्कार ही ईमानदारी की भाषा सिखाएँगे
क्योंकि विकास के लिए धूर्तता बहुत ज़रूरी है
कि अहंकारी ही ज्ञान का प्रचार करेंगे
क्योंकि विनम्रता में तो छिपी होती है मूर्खता।" [2]

आजादी के बाद समाजहित और देशहित को छोड़कर स्वहित को प्राधान्य देने वाला एक वर्ग इस देश में तेजी से उभरकर सामने आया। जिसे देश का नक्शा बनाने वाले, उसमें रंग भरने वाले तथा उसे फाड़ने वाले से कोई सरोकार नहीं है। अपनी ही दुनिया में खोये रहने वाले गुलाम मानसिकता के इन लोगों की पोल खोलते हुए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कहते हैं-

"एक बच्चा नक्शा बनाता है / तुम जानते हो वह कहाँ जाता है ?
एक बच्चा नक्शे में रंग भरता है / तुम जानते हो वह कहाँ गया ?
एक बच्चा नक्शा फाड़ देता है / तुम जानते हो वह कहाँ पहुँचा ?
यदि तुम जानते होते / तो तुम चुप नहीं बैठते / इस तरह।" [3]

आजादी के सत्तर साल बाद भी इस देश में आर्थिक विषमता तीव्र गति से बढ़ती ही जा रही है। आम और खास आदमी के बीच की दूरी को गन्ने का रस पीने वाले लोग तथा लोगों का रस पीने वाले गन्ने के माध्यम से समझाते हुए वाहरु सोनवणे 'और' कविता में कहते हैं-

"गन्ने का रस पीने वाले लोग / और
लोगों का रस पीने वाले गन्ने।" [4]

Scanned with CamScanner

भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इस धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय के लोग एक साथ रहते हैं, जो मनुष्यता के धर्म से बँधे हुए हैं। 'फूट डालो तथा राज करो' की अंग्रेजों की नीति पर चलने वाली हमारी देश की सियासत धर्म के नाम पर जनता को आपस में लड़वाकर समाज में तनाव उत्पन्न करती है। जिससे आम-आदमी की सुबह-शाम खतरे में आ गयी है। इस समय व्यवस्था के विरुद्ध सच बोलने वालों की जान जोखिम में और नाम खतरे में है। नूर मुहम्मद नूर धार्मिक उन्माद से बिगड़ते सामाजिक सद्भाव को वाणी देते हुए कहते हैं-

"उधर इस्लाम खतरे में, इधर है राम खतरे में
मगर मैं क्या करूँ, है मेरी सुबहो-शाम खतरे में।
ये क्या से क्या बना डाला है हमने मुल्क को अपने
कहीं हैरी, कहीं हामिद, कहीं हरनाम खतरे में।
न बोलो सच ज़ियादा 'नूर' वर्ना लोग देखेंगे
तुम्हारी जान ज़ोखिम में तुम्हारा नाम खतरे में।" [5]

भारत गाँव में बसता था लेकिन आज शहरीकरण के बढ़ते इस दौर में गाँव उजड़ रहे हैं। गाँव को छोड़कर सभी शहर की ओर दौड़ रहे हैं। जिससे गाँव की सहजता, सभ्यता एवं संस्कृति नष्ट हो रही है। स्मार्ट सिटी, फ्लैट, गार्डन, पार्लर, मार्केट तथा मॉल संस्कृति में अपने गाँव के लापता होने की शिकायत करते हुए संजय मासूम कहते हैं-

"शहर में हो गया तब्दील शायद
यहाँ इक गाँव था जो लापता है।" [6]

शहरी संस्कृति में पैसा ही मूल्य होने से रिश्तों में दरारें उत्पन्न हो रही हैं। इंसानियत के अभाव में शहरी सभ्यता एवं संस्कृति काग़ज़ी फूलों की तरह बनावटी, दिखाऊ और बिकाऊ है। नूर मुहम्मद नूर आदमियत के खज़ाने को शहर में ढूँढ़ते हुए कहते हैं-

"आदमी में आदमीयत और खुशबू फूल में
हो सके तो शहर में अब ये खज़ाना ढूँढ़ना।" [7]

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति तथा बढ़ते शहरीकरण ने एकल परिवार व्यवस्था को नष्ट कर दिया। 'हम दो हमारा एक' इस सूत्र पर खड़े इन घरों में संस्कारों का अकाल पड़ गया है। संस्कार दाताओं को वृद्धाश्रम भेजा जा रहा है। जिसके कारण आने वाली पीढ़ी संस्कार विहीन होती जा रही है। नौकरपेशा माँ-बाप के पास अपने बच्चों को देने के लिए समय और संस्कार न होंने से उनका जीवन अंधकारमय बनता जा रहा है। बच्चे देश का भविष्य होते हैं। जो गलत संस्कार तथा ब्ल्यू-

Scanned with CamScanner

व्हेल जैसे खेल के शिकार होते जा रहे हैं। बच्चों में बढ़ती हिंसा तथा आपराधिक प्रवृत्तियाँ उन्हें गुनहगार जगत की ओर लेकर जा रही हैं। गलत संस्कारों से मुरझा रहे देश के भविष्य को लेकर चिंतित लीलाधर जगूड़ी कहते हैं-

"इन बच्चों को कुछ दो पत्नी कहती है
समय दो-संस्कार दो
लेकिन दोनों ही नहीं है तुम्हारे पास
बहुत दिनों से हमने कुछ भी नहीं दिया बच्चों को
बचे यह क्या ले आए, दूसरे बच्चों से खेल में
दो-तीन शब्द ऐसे कि सारा घर हिला हुआ है।" [8]

भारत कृषि प्रधान देश है। वैश्वीकरण से उपजी मुक्त बाजार व्यवस्था ने किसान जीवन को तबाह किया। कृषि प्रधान देश में रोज होती किसानों की आत्महत्याएँ इस देश की व्यथा-कथा को बयान करती हैं। अपने खून-पसीने से मिट्टी को उर्वर बनाने वाला किसान कर्ज की मार से हारकर खुद मिट्टी में मिल जाता है तो उसकी फसल का दाम तय करने वाला आदमी सोने-सा चमकता है। 'हरितक्रांति' कविता के माध्यम से धूमिल किसानों को लूटने वाले आढ़तियों, साहूकारों, जमींदारों और व्यापारियों की पोल खोलते हुए कहते हैं-

"इतनी हरियाली के बावजूद / अर्जुन को नहीं मालूम
उसके गालों की हड्डी / क्यों उभर आयी है ?
उसके बाल सफेद क्यों हो गये हैं ?
लोहे की छोटी-सी दुकान में बैठा हुआ आदमी सोना
और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी
मिट्टी क्यों हो गया ?" [9]

बदलते ऋतु परिवर्तन, समय पर वर्षा न होने की पीड़ा इस देश के किसान, पशु-पक्षी तथा खेत-खलिहान भुगत रहे हैं। बरसात के दिनों में बादल रूपी घड़ों की रिक्तता बदलते प्राकृतिक परिदृश्य तथा किसान जीवन की त्रासदी को बयान करती हैं। वृक्ष कटौती, बढ़ता तापमान तथा प्रदूषण से नष्ट हो रहे पर्यावरण और उससे जुड़ी किसान जीवन की त्रासदी की ओर संकेत करते हुए सलीम अख्तर कहते हैं-

"होठ भी खेतों के उनसे तो भिगोये न गये
बादलों के घड़े बरसात में खाली निकले।" [10]

महँगाई तथा बेरोजगारी इस देश की प्रमुख समस्या है। जिसे नीलेश रघुवंशी ने 'बिना टिकट यात्रा करती लड़की' कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बिना टिकट यात्रा करती लड़की का आँखें बचाते हुए सफर करना, टिकट चैकर को

Scanned with CamScanner

देखकर उसमें उत्पन्न हुई घबराहट, उसे दूर करने के लिए उसका खिड़की से बाहर झाँकना, टिकट चैकर की नज़रों से बचने पर राहत की साँस लेना उसकी इन भाव-भंगिमाओं के पीछे की मजबूरी हर संवेदनशील हृदय को द्रवित कर देती है। बिना टिकट यात्रा करने पर बचने वाले पच्चीस रुपयों में वह अपने बीमार पिता के लिए फल और छोटी बहन के लिए एक किताब खरीदना चाहती है। एक ओर पारिवारिक जिम्मेदारियों का एहसास तो दूसरी ओर बढ़ती महँगाई और बेरोजगारी से लड़ने की अद्‌भुत क्षमता का अपूर्व संगम उसके चरित्र को निखारता है। नीलेश रघुवंशी कहती हैं-

"पच्चीस रुपये का टिकट तो
इस महँगाई और बेरोजगारी के दिनों में
अखरता है कितना
इस पच्चीस रुपयों में ले जा सकती है फल पिता के लिए।
खरीद सकती है / एक जरूरी किताब
अपनी छोटी बहन के लिए।" [11]

स्त्री सदियों से पुरुष प्रधान व्यवस्था से पीड़ित है। स्त्री जीवन का इतिहास मूलतः पीड़ा का इतिहास है। उसकी जीवन यात्रा भी गंगा की तरह कई कठिन रास्तों से होकर गुजरती है। गंगा से लेकर गंगासागर तक की उतार-चढ़ाव भरी यात्रा के माध्यम से नारी जीवन की संघर्ष यात्रा को बयान करती हुई निर्मला गर्ग कहती हैं-

"गंगा तुम अनवरत यात्री हो
यात्रा में पायी है तुमने अपनी निजता
यात्रा ही है तुम्हारी संवेदना / स्वतंत्रता भी वह तुम्हारी
कृष्णा बुदबुदाती है और उठकर चल देती है
शुरू होती है एक और ..... यात्रा।" [12]

मुक्ति की खोज में नारी अनवरत यात्री ही रहती है। यह यात्रा नारी जीवन की संवेदना तथा स्वतंत्रता की परिचायक है। नारी की तरह ही वर्णव्यवस्था तथा जातिव्यवस्था की शोषण-चक्की में पिसता दलित वर्ग अपने सदियों के संताप को शब्दबद्ध कर रहा है। दलितों के जीवन का प्रत्येक दिन गाली-गलौच, मार-पीट, हत्या, बलात्कार जैसी अमानवीय घटनाओं को झेलते हुए गुजरता आ रहा है। बदलती तारीखों के साथ भी न बदलने वाले दलितों के जीवन को लेकर जयप्रकाश कर्दम, चिंतित हैं। अतः वे मानवाधिकार के तहत शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाते हुए कहते हैं-

Scanned with CamScanner

"जिंदगी का प्रत्येक दिन
दमन और हिंसा के एक मुक्कमल दौर सा
बीत जाता है ऐसे / जैसे बदल जाती है
दफ्तर में टंगे कलेंडर की तारीख
बदलते रहते हैं बदलती तारीखों के साथ
लाशों के ढेर में दलित / बच्चे, बूढ़े, जवान
बलात्कृत होती रहती हैं स्त्रियाँ
होते जायेंगे यदि इसी तरह / दमन के शिकार दलित
उठ खड़ी होंगी लाशें / मनुष्य बनने की जद्दोजहद के साथ
चलने लग सकती हैं रोबोट की तरह।" [13]

प्रकृति की गोद में अपना जीवन बिताने वाले इस देश के मूल निवासी-आदिवासी अपने अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत हैं। आजादी के सत्तर साल बाद भी आदिवासी समाज नारकीय जीवन जीने के लिए विवश है। प्राकृतिक संसाधनों की लूट के लिए जंगलों में की जा रही घुसपैठ, उससे उजड़ते जंगल, जंगल को बचाए रखने के लिए किया जाने वाला संघर्ष तथा उससे उत्पन्न नक्सलवाद आदिवासियों की जीवन-गाथा को हमारे सामने रखता है। राजनेताओं की चालाकी, बुद्धिजीवियों का भ्रष्टाचार तथा बिकाऊ मीडिया द्वारा आदिवासियों को उग्रवादी, आतंकवादी के रूप में प्रस्तुत करने के षड्यंत्र की पोल खोलते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं-

"तुम्हारे शहरों के चालाक चौराहों,
मायावी राजपथों के तिलस्म में भटक जाते हैं
वैसे पूछूँ - आज तुम्हारे बौद्धिक मेले में
भ्रष्टाचार और जाति को लेकर बहस क्यों है ?
कि कुछ छोड़कर, तुम्हारे अखबार, टी.वी. में
हम कमजोर, चुप्पा, बेईमान, उग्रवादी, आतंकवादी क्यों हैं ?" [14]

समकालीन हिंदी कविता स्त्री, दलित तथा आदिवासियों के मानवाधिकार को नकारने वाली शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाती है। पुरुष प्रधान संस्कृति की मार झेलती स्त्री, वर्णव्यवस्था की चक्की में पिसता दलित तथा अपने अस्तित्व रक्षा के लिए विस्थापन की समस्या से जूझता आदिवासी समूह का विद्रोह समय की कोख में पल रहा है। जो एक दिन निश्चित रूप से आग का विकराल रूप धारण कर लेगा। निर्मला पुतुल 'धीरे-धीरे' कविता में कहती हैं-

Scanned with CamScanner

"अक्सर चुप रहने वाला आदमी
कभी-न-कभी बोलेगा जरूर सिर उठाकर
चुप्पी टूटेगी एक दिन धीरे-धीरे उसकी
धीरे-धीरे सख्त होंगे उसके इरादे
और तनेगी मुट्ठियाँ आकाश में व्यवस्था के खिलाफ
भीतर इजाद करते कई-कई खतरनाक शस्त्र।" [15]

किसान, मजदूर, स्त्री, दलित तथा आदिवासी वर्ग की संगठन शक्ति पर समकालीन हिंदी कवियों की अटूट श्रद्धा है। क्योंकि वे नेक, दयालु और ठगे जाने की हद तक सरल हैं। अतः उन्हीं के नेतृत्व में ही इस देश में स्वतंत्रता तथा समानता की सुबह जरूर होकर रहेगी। अरुण कमल 'हमारे युग का नायक' कविता में कहते हैं-

"खत्म हो जायेंगे राजकाज के तरीके पुराने
स्वतंत्रता, समानता की राह में
नहीं है दरकरार, कोई दाँव पेच न ही कोई तिकड़म
चाहिए नहीं कोई लोहपुरुष न कूटनीतिज्ञ
जो सबसे नेक है, सबसे दयालु/जो ठगे जाने की हद तक सरल
वे ही आएँगे सामने / और ले चलेंगे सबको प्रकाश की ओर।" [16]

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता की धारा सन् 1960 से लेकर आज तक निरंतर गतिशील है। आजादी के पश्चात् का मोहभंग, बढ़ती आर्थिक-सामाजिक विषमता से नष्ट होता सामाजिक स्वास्थ्य, साम्प्रदायिकता, पूँजी के विस्तार से फैलता बाजार, शहरीकरण से उजड़ते गाँव, उपभोक्तावादी संस्कृति के आक्रमण से टूटती मूल्यव्यवस्था, किसानों की आत्महत्याएँ, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार तथा महँगाई से लड़ती जनता, प्राकृतिक असमतोल से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएँ इन सभी पहलुओं को समकालीन हिंदी कविता अपने आप में समेटे हुए है। स्त्री, दलित तथा आदिवासियों के मानवाधिकार को नकारने वाली शोषणकारी व्यवस्था पर समकालीन हिंदी कविता प्रहार करती है। समाज के शोषित पीड़ित वर्ग की संगठनशक्ति पर उसकी अटूट श्रद्धा है। अतः उन्हीं के नेतृत्व में समाज में फैला अंधकार दूर होकर स्वतंत्रता एवं समानता की सुबह अवश्य होगी, इस प्रकार का आशावाद समकालीन हिंदी कविता से झलकता है। कुल मिलाकर समकालीन हिंदी कविता अपने समसामयिक यथार्थ को पूरी सच्चाई के साथ दो टूक शब्दों में बयान करती है।

Scanned with CamScanner

संदर्भ

1. डॉ. संतोषकुमार तिवारी - नये कवि : एक अध्ययन भाग-3, पृ. 153
2. सम्पा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी - आधुनिक भारतीय कविता संचयन 1950-2010, पृ. 204
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द, पृ. 22
4. वाहरु सोनवणे - पहाड़ हिलने लगा है, पृ. 34
5. सम्पा. रवीन्द्र कालिया - हिंदी की बेहतरीन ग़ज़लें, पृ. 117
6. वही, पृ. 125
7. वही, पृ. 118
8. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है, पृ. 73
9. धूमिल - सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, पृ. 65
10. सम्पा. रवीन्द्र कालिया - हिंदी की बेहतरीन ग़ज़लें, पृ. 115
11. सम्पा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी - आधुनिक भारतीय कविता संचयन 1950-2010, पृ. 225-226
12. निर्मला गर्ग - सफर के लिए रसद, पृ. 23
13. जयप्रकाश कर्दम - बस्तियों से बाहर, पृ. 18
14. महादेव टोप्पो - जंगल पहाड़ के पाठ, पृ. 76
15. निर्मला पुतुल - नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 84-85
16. अरुण कमल - नये इलाके में, पृ. 88

सहा.प्रा. हिंदी विभाग
र. भ. अट्टल महाविद्यालय,
गेवराई, जि. बीड

❖ ❖ ❖

Scanned with CamScanner